समत्वभाव

ईश्वर प्राप्ति के भिन्न भिन्न रास्ते बताए गए हैं। सारे रास्ते ठीक हैं। रास्ता तो कोई भी ग़लत नहीं हैं, यदि हमारा लक्ष्य ईश्वर हो। एक ही चीज़ लक्ष्य-भेद से भिन्न भिन्न कामों में लग जाता है। यह मनुष्य पर निर्भर करता है। अच्छे से अच्छा भी योगसाधन करे, यदि उसका लक्ष्य और हो तो उसको योग सिद्धि नहीं हो सकती। योग सिद्धि हो तो प्रयत्न भी लक्ष्यार्थ पर ले जाता है।

क्योंकि विधि है, जिसको जिस तरफ लगाएगा वैसा फायदा होगा। यदि हमारा लक्ष्य निष्काम है, ईश्वर है तो कोई भी साधना कर लो, ईश्वर मिल जाएगा। ईश्वर कोई ऐसा पदार्थ नहीं है जो इस संसार से कहीं दूर चला गया हो। जो साधना हम करते हैं, उस साधना के अंदर ही ईश्वर छुपा हुआ होता है। यदि ईश्वर न हो तो कोई भी साधना सृष्टि में संभव नहीं हो सकती। साधना क्या, सृष्टि में कोई भी कर्म कर लो, वह सब साधना ही माना जाएगा। लक्ष्य भिन्न होने से उसके नतीजे भी भिन्न हो जाते हैं।

शक्ति तो एक ही है। इसको ईश्वर में स्थिरता प्राप्त करने में लगाएगें हो ईश्वर प्राप्त हो जाता है। यदि इसको माया या अन्य बुरे की ओर लगाओ तो नतीजा भी वैसा ही निकल आता है। शक्ति तो वही है, उसको जिस भावना से प्रयोग करेंगे, नतीजा वैसा ही निकल आएगा। अच्छे भाव से प्रयोग करेंगे अच्छा नतीजा निकलेगा। बुरे भाव से प्रयोग करेंगे तो बुरा नतीजा निकेलगा। इसे प्रकृति की ओर झुकाओ तो वैसा नतीजा निकलेगा। बुराई की ओर लगाएंगे तो वैसा नतीजा निकलेगा। वास्तव में ईश्वर कोई ऐसा पदार्थ नहीं है जो एक सैकिण्ड के लिए भी हम से दूर हो गया हो।

"योगस्थ कुरू कर्माणि" हे अर्जुन संग को त्याग कर कर्म करो "सिद्धयसिद्धयोः समोभूत्वा समत्वं योग उच्यते।" सिद्धि और असिद्धि में जो समत्व है, इसे ही योग कहा। जो समत्व बुद्धि है वही योग होता है। जो असमत्व बुद्धि है वही वियोग होता है। किसी भी हालत में हमारी बुद्धि विचलित न हो, स्थिर रहे तो वही योग होता है। ऊपर दिखलाने के लिए हम षट कर्म करें, नौलि, वस्ति अंट शंट। इससे योग सिद्ध नहीं होगा।

पतंजलि-योग-सूत्र के पहले सूत्र में कहा है, "योगश्चितवृत्ति निरोधः।" पतंजलि कहता है योग वास्तव में वह है जो चित्त-वृत्ति का निरोध तो हुआ, किंतु भिन्न

भिन्न निरोध करने के बाद भी चित्त नहीं शांत हुआ तो वह वास्तव में योग नहीं हुआ। चित्त-वृत्ति निरोध कब होगा? जब समत्व बुद्धि होगा। जहां समत्व नहीं है वहां चित्त-वृत्ति का निरोध कभी भी नहीं होता। समत्व-बुद्धि की बड़ी भारी आवश्यकता है। समत्व-बुद्धि हो तो योग सिद्ध होता है। हरेक व्यक्ति योगी है।

ऐसा सृष्टि में कोई नहीं है जो योग का थोड़ा बहुत प्रयोग न करता हो सवेरे से शाम तक हम जितने कर्म करते हैं, उनमें अष्टांग-योग हमें हरेक में मिल जायेगा। विशाल-रूप में नहीं छोटे स्वरूप में। किसी भी चीज को प्राप्त करना हो तो अष्टांग-योग करना ही होगा। इस तरह से देखा जाए तो अष्टांग-योग सभी कोई कमी-बेशी से करता है, किन्तु पातंजल ने उसे थोड़ा विशद-रूप से करने को कहा। विशद-रूप से करने को कह कर वह कुछ सिद्धि प्राप्त करता है, सिद्धि प्राप्ति कर भी वह सम्प्रज्ञात समाधि तक ले गया। सम्प्रज्ञात-समाधि पर जा कर पातजंल योग पूर्ण होता है। किंतु जब तक असम्प्रज्ञात-समाधि नहीं मिलती तब तक पातंजल योग भी अधूरा माना जाएगा। सम्प्रज्ञात समाधि चार प्रकार का माना जाता है-

1. **वितर्कानुगत सम्प्रज्ञात समाधि**
2. **विचारानुगत सम्प्रज्ञात समाधि**
3. **आनन्दानुगत सम्प्रज्ञात समाधि**
4. **अस्मितानुगत सम्प्रज्ञात समाधि**

यही जो चार प्रकार की समाधि है, इसी से बहुत प्रकार की शक्तियाँ मनुष्य को प्राप्त होती हैं। अष्ट सिद्धियां वगैरह जो सिद्धियां है वे सब इन्हीं चार समाधियों से प्राप्त की जा सकती हैं। किंतु पातंजल का उद्देश्य सम्प्रज्ञात- समाधि नहीं है। सम्प्रज्ञात का भेदन करके ही असम्प्रज्ञात-समाधि प्राप्त होती है।

असप्रज्ञात-समाधि में जाना हो तो बुद्धि के विकार नष्ट होना जरूरी है। जब तक बुद्धि के विकार नष्ट न हो कोई असम्प्रज्ञत-समाधि में प्रवेश कर ही नहीं सकता है। बुद्धि के विकार नष्ट हुए बिना हमें किसी भी प्रकार की समाधि प्राप्ति नहीं हो सकती है। कहने का मतलब यह है कि सिद्धि असिद्धि के बीच जो समत्व-भाव है यह बुद्धि के विकार को नष्ट करने में बहुत योग करता है। किसी भी रास्ते पर जाओ, बुद्धि का विकार नष्ट

होना बहुत जरूरी है। राग-द्वेष वगैरह सभी जगह है। जिसकी बुद्धि में असमत्व है उसके चित्त में कभी भी शांति नहीं रह सकती।

वास्तव में असमत्व अवस्था ही अशांति का कारण है। बुद्धि की समत्वास्था ही शांति का कारण है। वास्तव में समत्व-भाव कैसे मिलेगा? जब समस्त पदार्थ में हमें एक ही भाव नज़र आता रहे। बनावटी समत्व कायम नहीं रह सकता है। बनावटी तो बनावटी ही रहेगा। यथार्थ-रूप से यदि समत्व-बुद्धि प्राप्त करना हो तो सब पदार्थ में एक ही चीज़ का अनुभव करना होगा। जो कुछ भी पदार्थ हमारे जीवन में सामने आता है, उठते बैठते सब में एक ही पदार्थ का अनुभव करना होगा। तब जाकर बुद्धि में समत्व-भाव होगा। इसके पहले बुद्धि में समत्व भाव नहीं होगा।

इसे आत्मा नाम से कहो, परमात्मा नाम से कहो या भिन्न-भिन्न नामों से जिसको जैसा चंगा लगे, उसी नाम को भरा देखना होगा, अनुभव करना होगा। इससे बुद्धि अपने आप असमत्व को छोड़ देगा और स्वयं को समत्व में स्थिर कर देगा। वह समाधि होता है। असमत्व-बुद्धि में समाधि कहां से प्राप्त हो सकता है? ईश्वर के अलावा जो कुछ भी हमें इस सृष्टि में प्रतीत होता है वह सब हमारा माना हुआ है, क्योंकि मानने की तो कोई सीमा नहीं। मानने के पीछे तीन प्रकार के गुण काम करते हैं। रजोगुण, सतोगुण, तमोगुण। इसके विपरीत भी बहुत कुछ हो सकता है। किन्तु मुख्यत: ये तीन प्रकार की ही मान्यता है। रजोगुणी मान्यता है, सतोगुणी मान्यता है। यह मानता ही सृष्टि की शक्ल में खड़ा हुआ है।

एक बच्चे का हम नारायण नाम रख देता है। वह अपने आपको नारायण मानने लग जाता है। सब को वह नारायण ही प्रतीत होने लगता है। भले ही वह नारायण वारायण कुछ न हो। उसको यह मान्यता है कि हम नारायण हैं। यह मान्यता होने के कारण ही हम उसे नारायण कहते हैं। इसी तरह किसी को हिन्दू, किसी को सिख, किसी को कुछ यह मान्यता ही भिन्नतव पैदा करता है।

इस मान्यता को छोड़ दें तो अभिन्नतव स्वयं सिद्ध होगा। जब तक हम मान्यता में फंसे रहेंगे-यथार्थ में कभी भी स्थिरता प्राप्त नहीं होगी। जैसे एक मनुष्य है, हम किसी समय उसे मित्र की शक्ल में देखते हैं, कभी उससे मनमुटाव हो जाए तो वही शत्रु के रूप में नज़र आता है। ये दोनों मान्यता है। वास्तव में उस मनुष्य में कोई फर्क नहीं आया होता है।

मान्यता बदल जाने से भाव भी बदल जाता है। मित्र के रूप में देखने से शक्ल कुछ और होता है।

सृष्टि में तुम्हें जो कुछ भी प्रतीत होता है वृक्ष के रूप में, लता के रूप में, पशु-पक्षी के रूप में, सब मान्यता पर निर्भर होता है। जैसे एक ही किस्म का अनाज हर किसी को खिलाया जाए-एक ही किस्म का अनाज मनुष्य भी खाए, पक्षी भी खाए, भिन्न भिन्न जीव खावें, वह सब अपनी अपनी मान्यता के मुताबिक उस अनाज को अपने शरीर में धारण करता है। कनक मनुष्य को खिलाया जाए तो उसमें से वीर्य पैदा होकर मनुष्य बन जाता है। किसी डंगर को खिलाया जाए तो वह डंगर बन जाएगा। पक्षी को खिलाया जाए तो पक्षी बन जाएगा। किसी मछली को खिलाया जाए तो मछली बन जाएगा। यह भिन्नतव भावना पर निर्भर करता है। अनाज वही है, लेकिन मान्यता की वजह से भिन्न भिन्न नज़र आने लग जाते हैं।

इसी तरह इस तमाम सृष्टि के भीतर आत्मा, परमात्मा तत्व होने के बावजूद, मान्यता की वजह से भिन्नतव प्रतीत होती है। संसार में किसी भी किस्म का झगड़ा हो, यह भावना के भिन्नतव की वजह से होता है। वैसे संसार में न कोई झगड़ा है, न कभी हो सकता है। यह भावना का भिन्नतव है। यह झगड़ा तभी बंद होगा, जब बुद्धि के अंदर जो माना हुआ भाव है-उस में परिवर्तन होगा। मान्यता भी हो तो अच्छी मान्यता करो। जैसा कि मैं पहले कह चुका हूँ, मान्यता तीन किस्म का होता है-सत्वगुणी, रजोगुणी, तमोगुणी।

यह सत्वगुणी भाव मनुष्य ज्यादा से ज्यादा अपनाने लगेगा तो दुनियां में कुछ शांति हो जायेगा। इसके विपरीत रजोगुणी, तमोगुणी मान्यता को मनुष्य अपनाएगा तो दुनियां का झगड़ा कभी मुकेगा भी नहीं। एक प्रधान रहेगा-कमी- पेशी रहेगा। इनका हमेशा आपस में संघर्ष रहता है। दुनियां में जहां कहीं भी लड़ाई खड़ा होता है, इन तीनों चीजों की शक्ल में खड़ा होता है। ये तीनों आपस में संघर्ष करते रहते हैं। दुनियां में जहां कहीं भी अशांती होती है, इन चीजों की शक्ल में खड़ी होती है। ये तीनों गुण आपस में संघर्ष करते रहते हैं। यह संघर्ष कभी भी खत्म नहीं हो सकता। जब तक सृष्टि है, संघर्ष भी रहेगा।

लेकिन विचारमान मनुष्य, बुद्धिमान मनुष्य अपने व्यक्तिगत-रूप से ये संघर्ष खत्म कर सकता है। समष्टिगत-रूप से ये संघर्ष कभी भी खत्म हुआ नहीं। समष्टिगत-रूप से यह संघर्ष खत्म हो जाए तो यह सृष्टि कायम नहीं रह सकती। संघर्ष से सृष्टि सिद्ध होती

है। संघर्ष न हो तो सृष्टि सिद्ध नहीं हो सकती। शरीर का अस्तित्व भी देखो तो संघर्ष से होता है। परमाणु आपस में संघर्ष करते हैं तभी शरीर सिद्ध होता है। मैं जो बोल रहा हूँ, यह बोलना भी संघर्ष से सिद्ध होता है। हां, इतना है कि अपनी मान्यता में सत्व की प्रधानता हो तो संघर्ष में भी सत्वगुण की प्रधानता होगी। खुद भी शांत रहेगा और सृष्टि में भी शांति होगी।

जैसे कि इस शरीर के भीतर कभी संघर्ष बंद नहीं होता। कभी हम बहुत प्रसन्न होते हैं, कभी जलन पैदा हो जाती है। किसी टाइम पर हम लोभी हो जाते है, कभी त्यागी हो जाते हैं। सवेरे से शाम तक हमारे हृदय में यह भिन्नतव क्यों पैदा होता है? देखा जाए तो यह दुःखों का भान होता है। कहने का तात्पर्य यह है कि कोई योगी मनुष्य ही, ईश्वरज्ञ ही अपने मनन द्वारा इस संघर्ष को खत्म कर सकता है। सत्वगुण प्रधान कर, आत्मा में स्थिरता प्राप्त करे, तब जाकर संघर्ष से छुटकारा प्राप्त हो जाता है।

लेकिन ईश्वर तत्व इन तीनों पदार्थों में समान-रूप से रहता है। रजोगुण में भी ईश्वर है, तमोगुणी में भी है और सत्व में भी है। लेकिन ईश्वर तत्व का भाव जान लिया जाए तो रजोगुण रजोगुण नहीं होगा, तमोगुण तमोगुण नहीं होगा। अपने आपको सिद्ध करने के लिए ईश्वर का भाव लाना आवश्यक है। जिसके अंदर ईश्वर नहीं होगा, वह हरकत नहीं कर सकता है। यदि हरकत है तो ईश्वर को मानना होगा। बिना ईश्वर के चैतन्य नहीं हो सकता।

चैतन्य ही हरकत का मूल कारण है। यदि रजोगुण, रजोगुण क्रियान्वित होता है तो उसके अंदर ईश्वर का भाव होगा। यदि इन तीनों में ईश्वर का भाव हो जाए-इन्हें हम देखते रहें तो तीनों गुण अपने अस्तित्व को छोड़ देगें। फिर एक ही भाव होने की वजह से समत्व बुद्धि होता है। इन तीनों में एक ही भाव है तो हमारी बुद्धि का द्वन्द्व-भाव समाप्त हो जाएगा। द्वन्द्व-भाव समाप्त होते ही समत्व हो जाएगा। समत्व मिलते ही समाधि हो जाएगी। समाधि के अंदर ही ईश्वर के यथार्थ-तत्व का पता लगता है। असमाधि-अवस्था के अंदर ही इस सृष्टि का भास होता है।

ये जितनी सृष्टि आपको भासता है, सूर्य, चंद्र, तारामण्डल-यह सब असमाधि-अवस्था के अंदर है। समाधि-अवस्था के अंदर ये सब कुछ नहीं भासेगा। बस एक अखण्ड चैतन्य। चैतन्य के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं होगा। यह भिन्नतव कहां पैदा होता है? यह असमाधि की अवस्था में पैदा होगा। असमाधि-अवस्था न हो तो यह भिन्नतव कभी

भी सिद्ध नहीं होगा। जब तक हमारी बुद्धि चंचल नहीं होगा, कल्पना नहीं करेगा, भिन्नतव कहां नज़र आएगा? सुषुप्ति अवस्था के अंदर बुद्धि जैसे थोड़ी देर के लिए लय हो जाती है, विकार नहीं होता है तो यह थोड़ी देर के लिए सिद्ध नहीं होती है। जब बुद्धि चंचल हो जाती है, हरकत में आ जाती है, तो यह भिन्नतव सिद्ध होती है। इससे सिद्ध होता है कि यह भिन्नतव, बुद्धि की कल्पना है। बुद्धि जब कल्पित होती है, असमाधि हो जाती है।

धी बुद्धि को कहते हैं 'समाधये धी-यस्य स समाधी।' बुद्धि की जो समाधान अवस्था है, विकार-रहित अवस्था है, उसी को समाधि कहते हैं। बुद्धि की विकार-अवस्था के अंदर सृष्टि बनता है। सृष्टि बनने के अंदर तीनों गुण काम करता है। अविकार-अवस्था के अंदर गुण काम नहीं करेगा, गुण लय रहने की वजह से शांति मिलता है। इस अवस्था में चैतन्य के साथ संबंध रहता है और कोई विकार न रहने से शांति मिलता है। हम शांति क्यों चाहता है? क्योंकि इसमें आनन्द मिलता है। आनंद प्राप्ति के लिए ही मनुष्य सारे काम करता है। जब तक समाधि नहीं होती, यह आनंद कभी भी नहीं मिल सकता है।

कारणवस्था के अंदर भी एक समाधि प्राप्त होती है थोड़ी देर के लिए। जैसे सुषुप्ति अवस्था के अंदर तुम जाते हो तो बड़ा आनंद का अनुभव करते हो। इस आनंद के मुकाबले में संसार के सब आनंद फीका पड़ जाते हैं। इसमें इतना आनंद क्यों है? इसका मूल कारण यह है कि यहां बुद्धि लय रहता है। दुनियां की अन्य चीजों में भी उस आनंद की ही एक झलक मात्र दिखाई पड़ती है। वह स्थाई नहीं होती। उसे प्राप्त करने के लिए हम अन्य-अन्य पदार्थों की ओर जाते हैं। बाहर की जागृत-अवस्था में यह आनंद कुछ ज्यादा देरी के लिए मिलता है। इसी आनन्द को ढूंढते-ढूंढते जब इस संसार के पदार्थों से हम दुःखी हो जाते हैं तो द्वारा सुषुप्ति अवस्था के अंदर जाने की कोशिश करते है।

सुषुप्ति अवस्था के अंदर जो शांति है वही हम जागृत-अवस्था के अन्दर प्राप्त करने की कोशिश करते हैं। यह वही आनंद है जो कारणावस्था में मिलता है। कारण अज्ञातनावृत होने के कारण यथार्थ आनंद नहीं माना जाता। यह थोड़ी देर के लिए मिलता है और स्थगित हो जाता है। यदि यह स्थिर हो जाये तो यह अखण्ड बन जायेगा। किंतु यह आनंद तब तक नही मिलता जब तक कि बुद्धि का विकार नष्ट नहीं हो जाए-वह स्थिर ना हो जाये। आनंद एक ही है, लेकिन स्थान-भेद से थोड़ा या ज्यादा भासता है।

वास्तव में आनंद बाहर के पदार्थों में नहीं है। बाहर का पदार्थ जो होता है, वह हमारे भीतर के आनंद को जागृत करने का एक ज़रिया–मात्र होता है। इच्छित पदार्थ प्राप्त होते ही बुद्धि में एक संतोष चमकने लग जाता है - जैसे कि मिठाई का स्वाद। लेकिन यह स्वाद खत्म होते ही यह आनंद भी खत्म हो जाता है। यह आनंद हमारे भीतर पहले से भी मौजूद था, वह मिठाई के जरिए से जागृत हुआ था। इसी प्रकार सृष्टि के अंदर जितने भी पदार्थ हैं, जिससे हमें आनंद का अनुभव होता है–वास्तव में वह आनंद हमारे भीतर ही मौजूद है। बाहर के पदार्थ केवल भीतर के भाव को जागृत करने में मदद करते हैं।

इसी प्रकार सृष्टि के सभी पदार्थों में ईश्वर का भाव जागृत कर लिया जाये तो ईश्वर, की यथार्थ अनुभूति हमें होने लगेगी। जिस चीज के कारण ईश्वर छुपा हुआ है, उस आवरण को हटाने से वह साक्षात् हो जाएगा। नारायण कहो, विष्णु कहो। ऐसा नहीं है कि वह स्वर्ग में है, बैकृण्ठ या सातवें आसमान में है। वहां भी हो सकता है लेकिन यहां भी है, हमसे दूर नहीं है। कोई यह कहे कि बकुण्ठ में दूसरे तरह का ईश्वर है तो यह गलत है। इस तरह तो गलत है। इस तरह तो ईश्वर टुकड़े–टुकड़े हो जाएगा। जैसे बेकुण्ठ में, वैसे ही इस लोक में, हमारे में, ईश्वर समान–रूप से रहता है। इस वृक्ष और इस लता में भी। यह वृक्ष ईश्वर के बिना सिद्ध नहीं होता। सृष्टि में जितने पदार्थ है, ईश्वर के बिना सिद्ध नहीं होते। हमारे शरीर का अस्तित्व किसके जरिए सिद्ध होता है?

वास्तव में इसके अंदर ईश्वर का तत्व मौजूद है, तभी इसका अस्तित्व सिद्ध होता है। इसी प्रकार सृष्टि के अंदर जितने भी पदार्थ हैं, वे सब ईश्वर के होने से ही सिद्ध होते हैं। भावना एक क्रिया है और क्रिया–शक्ति केवल चैतन्य होती है और किसी भी प्रकार से नहीं। हम भावना के जरिए सृष्टि को पैदा करते हैं तो भावना ईश्वर की वजह से काम करती है। हमारी भावना ही इस सृष्टि की शक्ल में खड़ी है और कुछ भी नहीं है। जैसे हमारे शरीर के अस्तित्व को सिद्ध करने के लिए भी और तमाम पदार्थों के भीतर भी उस चैतन्य को स्वीकार करना होगा। जब हर पदार्थ में वही नज़र आने लग जाएगा तो बुद्धि स्थिर हो जाएगी। बुद्धि स्थिर हो जाएगी तो समाधि हो जाएगी। समाधि–अवस्था में सृष्टि नहीं बचेगी। केवल चैतन्य बचेगा।

इस चैतन्य को चाहे भक्ति के जरिए से प्राप्ति करो, योग के जरिए प्राप्त करो या वेदांत के ज़रिये ये प्राप्त करो, जो भी ढंग जिसको आता हो, लक्ष्य तो एक ही होगा।

सुबह से शाम तक हम जितने काम करते हैं, सब उसी के कारण करते हैं। आनन्द, उस कारण शरीर में छुपा है। सूक्ष्म में थोड़ा उपाधि है, स्थूल में थोड़ा अधिक उपाधि है। मन पर पर्दा पड़ा हुआ है। इन पर्दों को हटाते चले जाओ–पीछे और पीछे हटते चले जाओ। एक अवस्था ऐसी आएगी कि यह समस्त उपाधि समाप्त हो जाएगी। वही ईश्वर स्थान होता है। उपाधि–रहित स्थैर्य होता है वही ईश्वर है। उपाधि ही संसार है। सृष्टि में जो भी पदार्थ पैदा होता है–वह बंधन का कारण बन जाता है। इसमें से किसी का भी संग करके किसी भी पदार्थ को अपनाने की कोशिश करोगे तो तुम बंधन में आ जाएगा। इसके विपरीत इस सृष्टि में यदि तुम किसी भी पदार्थ को न अपनाओ तो कोई बंधन नहीं आएगा, बिल्कुल स्वतंत्र हो जाएगा।

संसार को अपनाए बगैर किस तरह सृष्टि का काम चले? यह सवाल उत्पन्न होता है। कृष्ण वगैरह ने कहा इसको अपनाने की जरूरत नहीं। हल चलाओ किंतु ईश्वरीय काम समझ कर करो, अपना नहीं। सृष्टि के किसी भी पदार्थ को अपनाने की जरूरत नहीं। कर्म करो किंतु ईश्वरीय काम समझ कर करो, अपना नहीं। सृष्टि के किसी भी पदार्थ को अपनाओगे, बंधन आएगा। कृष्ण ने कहा किसी चीज को अपनाने का तुम्हें कोई हक नहीं। वायु से तुम काम ले सकते हो। उसे अपनाने का तुम्हारा हक नहीं। इसी तरह पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश के बारे में भी ऐसा ही मानो। यदि अपनाओगे तो बंधन होगा। राग–द्वेष होगा। जितने भी झगड़े हैं, राग–द्वेष से पैदा होते हैं।

इसीलिए गीताकार ने, शास्त्रकारों ने कहा कि किसी चीज को अपनाओ नहीं। या तो इसे ईश्वर का समझ कर काम करते जाओ। इनमें एक काम तो करना ही होगा। ईश्वर को अपनाओ या सृष्टि को। बुद्धि को स्थिर करने के लिए तो ईश्वर को अपनाना होगा। सृष्टि में ऐसा कोई जीव नहीं जो अपनी बुद्धि स्थिर न करना चाहता हो। यह पशु पक्षी और कीड़े मकौड़े भी यही काम करते हैं, लेकिन कामयाब नहीं होते हैं। क्योंकि उनको यह समझ किसी ने नहीं दी कि सृष्टि के पदार्थों से बुद्धि स्थिर नहीं होगी। सृष्टि में ऐसा कोई जीव नहीं है जो बुद्धि को चंचल बनाने की कोशिश करता हो। सभी स्थिरता का ही प्रयास करते हैं, लेकिन गलत ढंग से करते हैं। इसलिए कामयाबी नहीं होती। सही ढंग से करने का अर्थ है हर पदार्थ में परमात्मा का अनुभव करते जाओ–करते जाओ तो जरूरी है कि बुद्धि स्थिर हो जाएगी।

इस जन्म में हमारा यही लक्ष्य है। जन्म से मृत्यु तक हमें इसी का प्रयास करना है। लेकिन गलत ढंग से यह हासिल नहीं होगा। हर बच्चा भी यह चाहेगा कि बुद्धि स्थिर हो। मनुष्य-योनि का लक्ष्य ही यह है कि यह बुद्धि स्थिर हो। मनुष्य-योनि के अंदर आने के बावजूद भी हमने बुद्धि को स्थिर नहीं किया तो यह एक बड़ा भारी घाटा होगा। हमारा फर्ज़ है कि ऐसा करना चाहिए। इसे प्राप्त किए बिना शरीर छूट गया तो पता नहीं हम किस योनि में जाकर गिरें! मनुष्य-योनि में बुद्धि किंचित् विकसित होती है। अन्य योनियों में तो यह सुअवसर प्राप्त नहीं है। जहां कहीं कुछ भी होना सिद्ध होता है-वहां परमात्मा ही है। परमात्मा के बिना कोई भी पदार्थ सिद्ध हो ही नहीं सकता। यह सर्वत्र है। उसका साक्षात्कार करो। हम शरीर है, मन वान है, विचारवान है, यह सब उपाधियां हैं और बुद्धि का विकल्प है। इन उपाधियों को मिटाकर देखो तो आत्म-चैतन्य ही सिद्ध होगा और कुछ नहीं हो सकता।

इसके लिए जरिया चाहे योग का हो, भक्ति का हो, ज्ञान का हो, बुद्धि को स्थिर करना है। इसके अतिरिक्त इस सृष्टि में हमें कोई काम नहीं है। हम सवेरे से शाम तक, जन्म से मृत्यु तक, बुद्धि के इस विकार को ही शांत करने का काम करते हैं। किन्तु अज्ञान की वजह से यह हम समझ नहीं रहे। यह समझ आ गया तो मनुष्य जल्द इसमें से निकल सकता है। इसलिए हमारे कहने का अर्थ है कि यदि मनुष्य को जीवन सफल बनाना है तो बुद्धि को स्थिर करो। इसी में शांति है। बुद्धि को स्थिर करो, समत्व-भाव पैदा करो। सबमें समान-भाव पैदा करो। सबके अंदर परमात्मा का अनुभव करो। यही बुद्धि को स्थिर करने का सहज तरीका है। “इति”

- ॐ -